

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५३५ अंक-१६४, वर्ष-१४, मई-२०११

आसो वद ४, शुक्रवार ता.२०-१०-१९७८, 'बहेनश्री के वचनामृत'
बोल-३३५-३३६ पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका प्रवचन, प्रवचन-१२५

बाहर के चाहे जैसे संयोग में धर्म को नहीं छोड़ना, चैतन्य के ओरकी रुचि नहीं छोड़ना। धर्म या रुचि छूटी तो अमूल्य मनुष्यभव हार गये।।३३५।।

'बाहर के चाहे जैसे संयोग में धर्म को नहीं छोड़ना,...' आहा...हा..! चाहे तो प्रतिकूल संयोग हो या अनुकूल (संयोग) हो। पर मैं आनंदस्वरूप भगवान शुद्ध चैतन्यघन (हूँ) उसकी दृष्टि नहीं छोड़ना। आहा...हा..! मैं तो शुद्ध चैतन्यघन पूर्णानंद प्रभु ! सर्वज्ञ परमेश्वर, जिनेश्वर ने कहा वह, अज्ञानियोंने जो आत्मा-आत्मा कहा। वह नहीं। आहा...हा..! 'चाहे जैसे संयोगमें धर्म को...' दृष्टि-रुचि जो ज्ञायक हुई। शुद्ध चैतन्य स्वरूप की प्रतीति अनुभव हुआ, वहरुचि चाहे जितने (प्रतिकूल) संयोग हो... आहा...हा..! नहीं छोड़ना। यह रुचि-दृष्टि नहीं छोड़ना। आहा...हा..! जो आत्मा अपनी रुचि में पोषण हो गया, पोषण को क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु :- पड़ता आना..

पूज्य गुरुदेवश्री :- पोहाय... पोषण। अमने में पोसाता है। जैसे व्यापारी को माल पोसाता है न ? तीन रुपये मन हो और साढ़े तीन यहाँ उपजे तो वह माल पोसाता है। पर तीन रुपये में लाये और यहाँ ढाई रुपिया मिले वह माल पोसाता है ? बनिये ऐसा धंधा नहीं करते, ऐसे भगवानआत्मा। आहा...हा..! जिसे राग पोसाता नहीं, समय की पर्याय पोसाती नहीं। भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप (का) रुचि में पोसाण आया। आहा...हा..! प्रतिकूल कोई भी संयोग हो, निर्धन हो, पानी मिले नहीं, ये मिले नहीं, अकाल हो, दुनिया सारी दुश्मन हो जाये। पर अपने ज्ञायक स्वरूप की रुचि को नहीं छोड़ना। आहा...हा..! आहा...हा..! 'नियमसार' में आता है न ? आखिर में निंदा। कोई कितनी भी निंदा करे पर तुम जैनधर्म को नहीं छोड़ना। आहा...हा..!

मुमुक्षु :- 'नियमसार' में आखिर में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- 'नियमसार' में आखिर में कहने का आशय यह है कि, अपना आनंदस्वरूप भगवान वीतरागमूर्ति (है), उसकी प्रतीति और ज्ञान हुआ, वह लोक निंदा करे कि देखो ! यह तो निश्चय निश्चय की बातें



करता है ऐसा कहकर लोग विरोध करे (फिर भी) तुम छोड़ना मत, तेरी दृष्टि मत छोड़ना। आहा...हा..! समझ में आया ? ऐसा मार्ग है। (एक भाई) स्थानकवासी के शास्त्रों का लिखा हुआ सब आधार दे। इसमें यह कहा है, इसमें यह कहा है। दृष्टि ही विपरीत है। ... में है ना ? बड़े विरायतन किया है। वह एक है न ? 'मोरबी' के थे, मिले थे हमें। यहाँ आये थे। 'राजकोट' आये थे। 'गोंडल' आये थे। हाँ। 'गोंडल' आये थे, 'गोंडल' आये थे। पहले जब गये थे, (संवत्) १९६९ की साल में 'मोरबी' में (एक साधु का) चातुर्मास था। पता नहीं ? भाई ! 'मोरबी', 'मोरबी'। ६९ की साल। ७० वर्ष पहले। ६५ वर्ष पहले की बात है। हम गये थे, गृहस्थाश्रम में थे न ? 'पालेज' में दुकान थी तो वह छोड़कर आये थे। 'पालेज' में दुकान है न ! अभी दुकान है। वहाँ ९ साल तक रहे। 'भरुच' और 'वडोदरा' के बीच में 'पालेज' है। ९ साल हम वहाँ रहे। पिताजी की दुकान थी। पांच साल तो मैंने दुकान चलाई थी। १७ वर्ष से २२ वर्ष तक। पाँच साल। छोड़कर आये थे। फिर १९६९ में चातुर्मास था। 'मोरबी' में। तो हम गये थे। तब वहाँ (एक भाई) मिले थे। परन्तु श्रद्धा-बद्धा की कुछ खबर नहीं। बाहर में हो..हा, हो..हा... मारवाड़ी थे। बड़े मकान में 'मोरबी' में (रहे थे)। आठ दिन हम रहे थे। फिर 'राजकोट' (गये)।

आहा...हा..! पर ये चीज नहीं थी, बापू ! कहाँ थी ? हमने सब सुना है न ! वह दृष्टि ही विपरीत (थी)। आहा...हा..!

गुणसमुद्र भगवानआत्मा... आहा...हा..! उसकी जिसको अन्तर में रुचि हुई (उसे) कोई भी प्रतिकूल संयोग (आये), दुनिया सारी फिर जाये, पर वह दृष्टि जो रुचि हुई है वह फिरे नहीं। आहा...हा..! समझ में आया ? 'धर्म या रुचि छूटी...' आहा...हा..! अनंत-अनंत गुण का समुद्र प्रभु ! उसकी दृष्टि-रुचि हुई, वह जो छूट गई। आहा...हा..! तो 'अमूल्य मनुष्यभव हार गये।' मनुष्यभव मिला वह हार गये। आहा...हा..! दुनिया माननेवाला न मिले, विरोध करनेवाले मिले तो छोड़ना नहीं, धर्म रुचि छोड़ना नहीं। मैं तो पूर्णानंद का नाथ हूँ। मैं पर्याय में नहीं, मैं राग में नहीं। आहा...हा..!

'धर्म या रुचि...' धर्म यानी शुद्धचैतन्य भगवान आहा...हा..! उसकी दृष्टि और उसमें रमणता हुई हो। उसे नहीं छोड़ना। आहा...हा..! दुनिया माने या ना माने, संख्या हो या न हो, पर अपना आनंदस्वरूप भगवान सर्वज्ञ परमेश्वरने कहा, उसकी जो रुचि हुई, तो उसे नहीं छोड़ना। प्रतिकूल संयोग में नहीं छोड़ना। है ? 'अमूल्य मनुष्यभव हार गये।' आहा...हा..! ३५ (बोल पूरा हुआ)।

कर्मों के विविध विपाक में ज्ञायकभाव चलित नहीं होता। जिस प्रकार कीचड़ में कमल निर्लेप रहता है, उसी प्रकार चैतन्य भी चाहे जैसे कर्मसंयोग में निर्लेप रहता है।३३६।।

३३६। 'कर्मों के विविध पाक में ज्ञायकभाव चलित नहीं होता।' क्या कहते हैं ? भगवानआत्मा ज्ञायकस्वरूप, द्रव्यस्वरूप, पदार्थस्वरूप, तत्त्वस्वरूप, शुद्धचैतन्यघन, उसका कर्म का निमित्त से... 'कर्मों के विविध विपाक में ज्ञायकभाव चलित नहीं होता।' चाहे तो शुभ-अशुभ हो। आहा...हा..! कर्म के निमित्त के संग कर्म के विपाक से अपनी पर्याय में अशुभभाव हो (तो भी)

दृष्टि से चलित नहीं होना कि ऐसा (उदय) आ गया। ऐसा तो होता है। आहा...हा..! समझ में आया ?

'ज्ञायकभाव चलित नहीं होता।' ज्ञायक जो त्रिकाली प्रभु है वह दृष्टिमें से चलित नहीं होता, वह वस्तु नहीं चलित होती। आहा...हा..! चाहे तो रौद्रध्यान हो जाय। आहा...हा..! समझ में आया ? कर्म के विपाक के संग में अशुभभाव मलिन आ जाये परन्तु ज्ञायकभाव उसमें

आता नहीं। ज्ञायकभाव चलित नहीं होता। आहा...हा..! ज्ञायकभाव तो ज्ञायकभाव ही रहता है। धर्मी की दृष्टि में ज्ञायकभाव आया वह तो वैसा ही रहता है। आहा...हा..! ऐसी बात है।

‘कर्म के विविध विपाक में ज्ञायकभाव चलित नहीं होता।’ आहा...हा..! त्रिकाली ज्ञायकभाव चलित नहीं होता। दृष्टि में आया न ? ऐसा कहते हैं। यह वस्तु जो है त्रिकाल द्रव्यस्वभाव, वह पर्याय की उस पार अंदर है। आहा...हा..! पर्याय है वह उपर है और वस्तु अन्दर है। अरे..! यह क्या ? पर्याय जो वर्तमान बहार पर्याय दिखती है, जानने की, श्रद्धा की, विचार करने की पर्याय है, वह पर्याय एक समय की है। उसमें वस्तु अन्तर में तल में अन्दर भिन्न है। पर्याय में आती नहीं, पर्याय तो उपर-उपर तीरती है। आहा...हा..! आहा...हा..! और जिस पर्याय से निर्णय होता वह पर्याय उपर तरती है, ऐसा कहते हैं। आहा...हा..!

वह तो सवेरे में एक विचार यह आया था। भाई का, ‘सोगानी’ का। ‘पर्याय मेरा ध्यान करो तो करो। मैं किसका करुं ?’ आता है उसमें ? ‘सोगानी थे।’ ‘कलकत्ता’ ‘निहालचन्द सोगानी ! यहाँ आये। बहुत वांचन था।’ पैसेवाला। ‘लड़का है, बहुत पैसा है। बहुत वांचन किया था, शास्त्र-अभ्यास किया था।’ बावा-जोगी को मिले थे, जैन के साधु को (मिले थे)। ‘फिर यहाँ आये। इतना कहा, प्रभु ! यह राग का जो विकल्प उठता है न उससे अन्दर भगवान भिन्न है। आहा...हा..! ऐसे ही विचार में रात (को) घोलन किया, सम्यग्दर्शन निर्विकल्प ध्यान होकर उठ गये। उसमें लिखा है। है ? आज सवेरे याद आया था।’ आगे लिखा है न ? वरना तो हाथ भी न आये। भाईने निकाला था। ६० नंबर के पत्रे पर है। देखो ! ६० पत्रे पर था ? भाई ! दूसरा भाग है। उसमें भी पत्रा फिरता है ? आहा...हा..! (बोल-२७९)

‘(अभिप्राय की) ज़रा-सी भूल वह भी पूरी भूल है।’ अभिप्राय में ज़रा सी भूल की राग मेरा है, पर्याय मेरी है, इतना भी हो तो बड़ी भूल है। ‘पर्याय ध्यान करनेवाली है,...’ हिन्दी है। पर्याय जो ज्ञान की वर्तमान

दशा है, वह ध्यान करनेवाली (है)। वह मेरा ध्यान करती है। मैं तो ध्रुव हूँ। (पुस्तक) मिला है न ? आहा...हा..!

‘पर्याय ध्यान करनेवाली है’ आहा...हा..! राग नहीं, शरीर नहीं, पर्याय ध्रुव नहीं। ध्रुव का ध्यान करनेवाली पर्याय है। अरे..! अरे..! ऐसी बातें हैं। कभी सुनी न हो।

‘पर्याय ध्यान करनेवाली है, और ‘मैं’ तो ध्यान की विषयभूत वस्तु हूँ...’ पर्याय ध्यान करो परन्तु मैं तो पर्याय के ध्यान का विषय जो त्रिकाली वस्तु है, वह मैं हूँ। आहा...हा..! **‘पर्याय मेरा ध्यान करती है, ‘मैं ध्यान करनेवाला नहीं हूँ।’** आहा...हा..! पढ़ा है आपने ? पढ़ा है ? आहा...हा..!

शरीर, वाणी, मन तो जड़-पर है। राग-दया, दान, विकल्प, हिंसा वह तो विकार है। परन्तु विकार बिना की यहाँ जो पर्याय है, वह पर्याय मेरा ध्यान करती है। मैं तो ध्रुव-अनंत गुण का पिण्ड प्रभु ध्रुव हूँ। आहा...हा..! ‘द्रव्यदृष्टि प्रकाश’ आ गया है ? भाई ! है वहाँ। आहा...हा..! ‘लंदन’। भेजने के लिये। भाई भेजनेवाले हैं ‘लंदन’। (एक मुमुक्षु) है न वहाँ ? ‘लंदन’ में यहाँ का पढ़ते हैं, यहाँ का वांचन है। यहाँ का प्रचार ‘लंदन’ में है। भाई भेजनेवाले हैं, उनको मिला नहीं। (एक मुमुक्षु) है, वहाँ पढ़ते हैं। मुमुक्षु इकट्ठा करते हैं। ओ...हो...! ऐसा मार्ग कभी सुना नहीं, जाना नहीं। ‘आफ्रिका’ से दूर है न ? भाई ! दूर है ? ‘आफ्रिका’ से दूर। ‘आफ्रिका’ पास है, ‘लंदन’ दूर है।

‘आफ्रिका’ में तो १५ लाख का मन्दिर अभी हुआ है। जयेष्ठ सुद ११। वहाँ श्वेतांबर के ६० घर हैं, वे सब दिग्बर हो गये हैं। ‘आफ्रिका’ में ‘नाईरोबी’ २५-३० वर्ष से यहाँ का वांचन चलता है और ‘समयसार’ का टेप रेकोर्डिंग पांच हजार ले गये हैं। ‘आफ्रिका’। जेठ सुद ११ में पंद्रह लाख का नया मन्दिर बन रहा है, ढाई लाख का तो है, स्वाध्याय करते हैं। सब एकसाथ मिलकर खातमुहूर्त... क्या कहते हैं ? शिलान्यास। ‘आफ्रिका’ में अपने मुमुक्षुओंने पन्द्रह लाख का दिगम्बर मन्दिर का शिलान्यास किया। ‘आफ्रिका’।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- कौन करे ? यह तो हुआ उसका बताना है। डेढ़ वर्ष में पूरा होगा।

विनती करने आयेगे। शरीर को ८९ वर्ष हुए। गर्भ के तो ९० है। सवा नव महीने गिने तो। गर्भ के गिने तो शरीर का ९० वर्ष चल रहा है।

मुमुक्षु :- हवा-पानी आपको अनुकूल है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- खोराक साधारण। चार फूलके (-रोटी)।

मुमुक्षु :- यहाँ हवा-पानी अच्छे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह तो पता नहीं परन्तु वहाँ के हवा-पानी अच्छे नहीं है ऐसा कहते हैं। दिसम्बर में अच्छे होते हैं। ऐसा कुछ है। आगे-पीछे हवा-पानी अच्छे नहीं होते। बहुत सर्दी (होती है)।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ ऐसा कहते हैं। अब देखो क्या होगा ?

यहाँ तो कहते हैं... आहा...हा..! पर्याय ध्यान करे तो करो। आहा...हा..! मैं तो अनंत आनन्द का कन्द प्रभु हूँ। आहा...हा..! भाई ! यह 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' मिला है कि नहीं ?

मुमुक्षु :- 'द्रव्यदृष्टिप्रकाश' ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ है न। वह तो पहले से है न। आहा...हा..!

मैं कौन हूँ ? मैं तो अनंतगुण का समुद्र-दरिया परमात्मस्वरूप मैं हूँ। अभी, हाँ ! यदि परमात्मस्वरूप न हो तो पर्याय में परमात्मस्वरूप, केवली अरिहंत को होता है वह कहाँ से आयेगा ? बहार से आयेगी कोई चीज ? आहा...हा..!

भगवानआत्मा मैं ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव (हूँ)। 'उत्पाद व्यय ध्रुवयुक्तं सत्' उसमें उत्पाद-व्यय पर्याय है। ध्रुव त्रिकाली नय की अपेक्षा से द्रव्य है। नय का द्रव्य। प्रमाण का द्रव्य तो दोनों मिलकर (होता है)। आहा...हा..! यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दृष्टिजीव धर्मी इसे कहें कि ध्रुव स्वरूपी मैं हूँ (ऐसी दृष्टि हुई है)। आहा...हा..! त्रिकाली द्रव्यस्वभाव जो वस्तु ज्ञायकभाव वह मैं हूँ। यह मैं हूँ ऐसा पर्याय मानती है, ध्रुव नहीं। ध्रुव मैं हूँ ऐसा पर्याय कहती है कि मैं ध्रुव हूँ। पर्याय ध्रुव का ध्यान करती है। ऐसी बातें हैं। ऐसा कठीन है, बापू ! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग कोई अलौकिक है। लोगों को मिला नहीं है, आहा...हा..! अजैन में जैनपना मान कर जीवन चला जाता है। आहा...हा..!

भगवान आत्मा वीतरागबिब प्रभु मैं हूँ, ऐसा धर्मी जानते हैं। (ऐसा) मैं हूँ, ऐसा पर्याय कहती है। पर्याय ऐसा (कहती) है, मैं पर्याय हूँ ऐसा नहीं। आहा...हा..! त्रिकाल भगवान रहनेवाला, आदि-अन्त बिना की चीज है नित्यानंदप्रभु ध्रुव, सम्यग्दृष्टि की पर्याय। ऐसा कहती है कि मैं यह हूँ। आहा...हा..! उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं, बाकी तो मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा..!

'मैं तो ध्यान का विषय हूँ; इस बात में ज़रा-सा फेर लगता है; परन्तु रात-दिन जितना बड़ा फेर है। (एक में पर्यायदृष्टि रहती है जबकि दूसरे में द्रव्यदृष्टि होती है,...' ऐसा कहते हैं। आहा...हा..! 'मैं ध्यान करनेवाला नहीं, मैं तो ध्यान का विषय हूँ...' आहा...हा..! ध्यान करनेवाला मैं और ध्यान का विषय वह मैं, दो में फेर है। एक पर्यायबुद्धि है, एक द्रव्यबुद्धि है, इतना फेर है। विशेष लेंगे...

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (मई-२०११) का शुल्क

श्री दिलीपभाई मेघजीभाई सावला, (मुंबई) एवं

एक मुमुक्षुबहन (हैद्राबाद) के नाम से साभार प्राप्त हुआ है, जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

पूज्य भाईश्री शशीभाई के पूज्य सोगानीजी सम्बन्धित हृदयोद्गार

दृष्टांत का विचार करें तो सोगानीजी को गुरुदेव के प्रति कितनी भक्ति थी, यह उनके जो मूल पत्र हैं उनमें प्रसिद्ध हुए बिना नहीं रहती। लेकिन मुझे गुरुदेव प्रति बहुत भक्ति है, ऐसा दिखाव उन्होंने कभी नहीं किया है। भक्ति कितनी थी यह बात अब गुप्त नहीं रही। भक्ति के प्रकरण में तो-सत्पुरुष की भक्ति के प्रकरण में तो उनके भक्तिभाव का तीन पत्रों में उल्लेख आया है। फिर भी बाहर में ऐसा दिखाव करने का उनसे कभी भी नहीं बना है। यह सहजता दर्शाती है। यह उनका प्रकृतिगत विषय था कि सहज-सहज जैसा चलता है वैसे चलने देना। कुछ भी कृत्रिम दिखाव करके कुछ नहीं करना अथवा कोई बात पहले से निश्चित कर लेनी और फिर उसका दिखाव करना, वैसी बात करना, इसप्रकार बात बनाकर रखना यह भी उनको जमता नहीं था। यह सहजदशा (है), यह ज्ञानी का परिणमन है।

(अध्यात्म सुधा-भाग-१, पत्रा-३१)



एक बहुत ही लाक्षणिक पद्धति से सोगानीजी ने एक पत्र में ऐसा लिखा है कि हे विकल्प ! अब तो तुम शांत हो जाओ। भले ही व्यापारी थे फिर भी उनकी शैली लेखक जैसी थी ! (लिखते हैं कि,) हे विकल्प ! तुम शांत हो जाओ अर्थात् तुम मर जाओ, ऐसा कहते हैं। और यदि तुझे शांत नहीं होना है और यदि तुझे जिंदा रहना है तो मुझे श्रीगुरु के चरण में ले चल। क्या कहा ? हे विकल्प ! यदि तुझे जीवित रहना हो तो तुम मुझे सद्गुरु-श्रीगुरु के चरण में ले चल, वरना श्रीगुरु ने ऐसा शस्त्र मुझे दिया है कि, तेरी मौत हो जायेगी, तुम बच नहीं पाओगे। तुझे यदी थोड़ा-सा भी जीवित रहना हो तो अभी भी एक स्थान है, इतना रास्ता है, इतना अवकाश है कि तुम मुझे श्रीगुरु के चरण में ले चल, दूसरा विकल्प तो तुम होना ही नहीं, ऐसा कहते हैं। **बहुत निश्चयप्रधान भाषा थी, दृष्टि का जोर भी बहुत था, फिर भी भक्ति ऐसी ही उत्पन्न हुई है ! यह एक विशेषता है ! उनके पत्र में यह एक विशिष्ट विशेषता है।**

(अध्यात्म सुधा-भाग-१, पत्रा-२४८)



सोगानीजी ने Indirect speech में एक बहुत अच्छी बात कही है कि, पहले ऐसा लगता था कि मोक्ष तो बहुत ऊँची बात है, मोक्ष पाना यह तो बहुत उँची बात है। गुरुदेव की भक्ति करते-करते, महिमा करते-करते (कहते हैं कि) हे गुरुदेव ! आपके वचन श्रवण होने के बाद तो मोक्ष की बात बहुत साधारण हो गई है। क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति तो मुझे होगी ही। मोक्ष प्राप्त करना उसमें कौन-सी बड़ी बात है ! वह तो एक समय की पर्याय है, उसके तो सामने भी कौन देखने को तैयार है ? ऐसी सहज बात कही है। कैसे कह दी ? कि मैं भगवान हूँ.. मैं भगवान हूँ... इसप्रकार पर्याय भगवान का-निज भगवान का भजन करने लगी, उसमें मोक्ष की बात तो साधारण हो गई ! मोक्ष की इतनी बड़ी बात दिखती थी वह बात इतनी साधारण हो जायेगी इसकी तो कल्पना तक नहीं थी। ऐसे भाव में यह वाक्य लिखे हैं, बहुत भाववाही लिखे हैं। आपके वचनों का चमत्कार तो देखिये ! ऐसा कहकर वास्तव में तो उन्होंने वहाँ भक्ति की है और अनेक जगह जहाँ-जहाँ सिद्धांत की और मूल द्रव्य की बात उन्होंने कही है, वह बात करने में कई बार आगे या कई बार पीछे गुरुदेव के नाम पर उस बात को चढ़ा दी है। गुरुदेव ऐसा कहते

(शेष अंश पृष्ठ संख्या-१९ पर)



श्री स्वानुभूतिदर्शन, प्रश्न २४३ पर पूज्य भाईश्री
शशीभाई का प्रवचन, प्रवचन नं. ४२०
(दि.२४-९-१९९७, कलकत्ता)

मुमुक्षु :- उदय में फेरफार करने जानेपर खुद के परिणामों में फेरफार कर लेता है तो क्या उदय में फेरफार संभव है ?

पूज्य भाईश्री :- उदय में फेरफार शक्य नहीं है जैसे तो। उदय में आ जाने के बाद उदय में बदलाव शक्य नहीं है। वह विषय थोड़ा अधिक गहरा है। जैसे कि कोई ज्ञानी मुनि होते हैं, मुनिदशा तक पहुँच जाते हैं और मुनि हो जाते हैं जबकि कोई ज्ञानी मुनि नहीं होते। मुनिदशा तक पहुँचते भी नहीं और मुनि बनते भी नहीं हैं, फिर भी उनका दीर्घ संसार नहीं होता।

जैसे कि 'कृपालुदेव'। यह गणित बहुत सूक्ष्म है, विचित्र है। बाहर में मुनिदशा आ जाये, निश्चितरूप से वह उच्च दशा है और त्याग दशा भी है। अंतर-बाह्य दोनों उच्च कोटि की दशा है जबकि इनकी अत्यागदशा है वह उतनी उच्च कोटि की दशा दिखती नहीं है, और गुणस्थान की गिनति से भी देखे तो नहीं है। फिर भी उसदशा में चारित्रमोह का मूल, दर्शनमोह तो चला गया है, चारित्रमोह का मूल किसतरह वे काटते हैं कि उनका दीर्घ संसार नहीं होता। एकाद भव में मोक्ष चले जायेंगे, मोक्ष में चले जायेंगे।

ऐसा ही एक दूसरा दृष्टान्त है। 'बाहुबली' व 'भरत' महाराजा का। 'बाहुबलीजी' को वैराग्य पहले आया। दोनों भाई के बीच लड़ाई हुई। दोनों ही क्षायिक सम्यक्दृष्टि थे। तद्भव मोक्षगामी थे। परन्तु वैराग्य पहले आया 'बाहुबलीजी' को और देर से आया 'भरत' महाराजा को। 'बाहुबलीजी' एक हजार साल तक मुनिदशा में रहे बाद में

केवलज्ञान हुआ और उसमें भी उन्होंने ज्ञान-ध्यान बहुत किया। खड़गासन में ध्यान करते-करते पैरों में लताएँ लिपट गई थी तो भी वे विचलित नहीं हुए। जंगल में खड़े-खड़े ध्यान करते हो, बेलाएँ उगने लगी और लिपटने लगी फिर भी विचलित नहीं हुए। एक हजार साल बाद केवलज्ञान हुआ।

'भरत महाराजा' उस वक्त राज्य कर रहे थे। राजकाज में रहकर बहुत साधना की है। जैसे ही वैराग्य आया (कि) अंतर्मुहूर्त में केवलज्ञान लिया। यह समझ में आये ऐसा विषय है ?

मुमुक्षु :- Calculation नहीं है।

पूज्य भाईश्री :- Calculation से समझ में नहीं आये ऐसा विषय है। गणित से गिनती करने बैठे तो समझ में नहीं आये ऐसा विषय है। परन्तु साधना के प्रकार बहुत गहन हैं। साधना का विशिष्ट प्रकार ऐसा है कि प्रवृत्ति में रहे हुए संचित कर्मों की निर्जरा (जो) ज्ञानियों, कुछएक ज्ञानियों, बहुत विशिष्ट प्रकार से उस संसार को काट देते हैं। भले ही उनका बाह्यत्याग और मुनिदशा इतनी हद तक नहीं पहुँचे हो उस भव में लेकिन इसलिए उन्होंने कार्य कुछ कम किया है ऐसा नहीं कह सकते। और यह इनके परिणाम और Result दिखाता है। उस विषय को साबित करते हैं।

प्रश्न :- बाहुबलीजी मान की वजह से अटक गये थे इसलिए ?

समाधान :- वह चाहे जैसे प्रकार से। लेकिन केवलज्ञान नहीं लिया था सो बात तो निश्चित है। बहुत स्थूल मान का प्रकार तो हालाँकि होता ही नहीं। जो कथा में आता है उतना स्थूल मान

उनको नहीं होता है कि मैं अभी भरत की भूमि पर खड़ा हूँ। मुनिदशा में इतना तीव्र कषाय नहीं होता। ऐसी-ऐसी कथाएँ तो सब बालबुद्धिजीवों को समझाने के लिये होती हैं। इसका सूक्ष्म प्रकार होता है संजवल्न का अर्थात् वह तो जो मुनिदशा को समझते हो उसे ख्याल में आये दूसरे को ख्याल में नहीं आता।

'कृपालुदेव' ने जो पत्र लिखा है, ७०८ नंबर का पत्र है। उसमें उन्होंने इसकी चर्चा की है कि सर्वसंगपरित्याग की दशा आने पर जिनशासन की प्रभावना करनी है इससे पहले उपदेशक की प्रवृत्ति करने की इच्छा नहीं है। 'सोभाग्यभाई' और 'अंबालालभाई' वे लोग Pressure करते थे कि आपका सामर्थ्य बहुत है और आप अगर जिनशासन की प्रवृत्ति करेंगे तो अनेकों जीव को लाभ होने की संभावना है तो आप जैसे कैसे भी सामाजिक Platform पर आइये। कहने का मतलब इतना है। 'कृपालुदेव' ने इस विषय में बहुत मंथन किया है और उस मंथन को अपने पत्र में व्यक्त भी किया है कि मैं क्यों नहीं आना चाहता ? स्वयं ऐसा चाहते हैं कि सर्वसंग परित्याग करके मुनिदशा में आकर उपदेश देना। इसके पहले उपदेश देने में अनेक जीवों को शंका का कारण होगा। और जिन-जिन जीवों को शंका का कारण होगा उनको बहुत नुकसान होगा जबकि महात्माओंने, तीर्थकरोंने भी सर्वसंगपरित्यागदशा में आकर उपदेशक की पद्धति की है अतः उनकी परम्परा मुझे तोड़नी नहीं चाहिये। ऐसा भी मेरा अभिप्राय है। इसतरह सभी पहलू से विचार करके मैंने यह नक्की किया है।

अब सर्वसंग परित्याग अभी भी मैं कर सकता हूँ, ऐसा वापिस लिखते भी हैं। अभी मैं अगर सर्वसंगपरित्याग कर लूँ तो मेरे परिणाम बिगड़ जाये सो बात नहीं है। कि जैसे भाई ! मैंने कुटुम्ब छोड़ा तो मेरे परिणाम कुटुम्ब के प्रति खिचेंगे ऐसा कोई डर नहीं है। इतनी तैयारी है। फिर भी मुझे

ऐसा लगता है कि अमुक, कुछएक प्रकार के पूर्वकर्म जो हैं उसका वेदन किये बिना मुझे सर्वसंगपरित्याग की परिस्थिति नहीं दिखती है। अतः अभी मुझे ऐसा लगता है कि अभी भी पाँच-छः साल निकल जायेंगे। ऐसा स्वयं तीस साल की उम्र में लिखते हैं ? ७०८ वाँ पत्र है मतलब तीसवाँ वर्ष चल रहा है और छः साल और लगेंगे ऐसा खुद ने अनुमान लगाया है यानी कि छत्तीस वें साल में मुनिदशा आयेगी।

अब Actually, ३३ वर्ष, पाँच महीना और बीस दिन की ही उनकी आयु थी। चैत्र वदि पाँचम यानी चैत्र महीने के बीस दिन हुए। फाल्गुन में पाँच महीने पूर्ण होते हैं। छठे महीने के बीसवें दिन उनका देहत्याग हुआ है। जबकि उन्होंने अंदाज लगाया है छ साल का। यानी तब अपनी आयु कितनी है उस पर उनका उपयोग नहीं गया है। वरना उनको तो ज्योतिष का भी ज्ञान था। देहलिंगजन्य भी ज्ञान था। वह 'जेठाभाई' के लिये उन्होंने लगाया था। उसमें फिर पन्द्रह दिन का फर्क पड़ा है उनके अंदाज से। और 'सौभाग्यभाई' का भी उनको ख्याल आ गया था अतः उन्हें ऐसी स्थिति में भी 'ईडर' ले गये थे फिर अकेले छोड़ दिये और बहुत व्यवस्थित रीत से सारा काम हो गया।

अब यह जो उनकी चर्चा है ये बहुत गहनतापूर्ण चर्चा है। ध्यान से उसपर यदि विचार चले तो जो पूर्वकर्म का उनको ख्याल आता है कि इन कर्मों का वेदन किये बिना दूसरा कोई उपाय नहीं है तो वे कर्म के उदय में फेरफार करने के बजाय पुरुषार्थ की उग्रता में आ जाते हैं। अब इसका ख्याल ज्ञानदशा में जो आता है वह श्रुतज्ञान का बहुत गहन विषय है। इसका स्वयं को पता चल जाता है कि अभी भी ये इतने कर्म, इतने साल तक चलेंगे ऐसा दिखता है और उसका वेदन किये बिना, भोगे बिना सर्वसंगपरित्याग की दशा दिखती नहीं है, बाह्यत्याग की स्थिति

दिखती नहीं है। वरना स्वयं तो समर्थ हैं और मुनिदशा में आ जाये इतनी उनकी विशेष शक्ति है।

उदय देखकर स्वयं आकुलता नहीं पाते, वैसे उदय में रुचि भी नहीं है। उदय में उनको रुचि भी नहीं है और उदय में रहे-रहे बहुत निर्जरा करते हैं। अन्दर का पुरुषार्थ बहुत तीव्र रहता था। अतः एकाद भव में तो मोक्ष चले जायेंगे। यह बहुत गहन विषय है। सामान्य गिनती में किसी को नहीं समझ में आये ऐसा विषय है। पुरुषार्थ के प्रकार को जो समझते हैं उनको ख्याल आये ऐसा विषय है। बहुत से महात्माओं ने ऐसा काम किया है।

'रामचन्द्रजी' क्षायिक सम्यक्दृष्टि थे। बाह्य उदय में धूप-छाँव बहुत आये थे। सीताहरण से लेकर 'रावण' के युद्ध तक 'लक्ष्मणजी' का देहत्याग हुआ। बाह्य परिस्थिति बहुत चित्र-विचित्र चली है बाहर से स्पष्टरूप से अच्छी न दिखे ऐसी। एक ज्ञानी, समर्थ ज्ञानीपुरुष को अथवा वे 'रामचन्द्रजी' तो एक युगपुरुष कहलाये ऐसे पुरुष थे, जिनके नाम पर इतना बड़ा संप्रदाय आज भी चलता है।

वे 'लक्ष्मणजी' और 'सीताजी' के पीछे लोग पागल कहे ऐसी ही परिणाम बाहर में उनके थे। साढ़े सत्रह हजार साल तो उन्होंने 'रावण' के साथ युद्ध करने के बाद में 'अयोध्या' में आकर राज्य किया है। सत्तर हजार और पाँच सौ वर्ष तक तो राज्य किया है और फिर भी उसी भव में मोक्ष पधारे हैं। दूसरा भव नहीं किया। राजकाज भोगने के पश्चात् भी।

ये इन लोगों की हिन्दुओं की 'रामायण' में तो ऐसा आता है कि उन्हें एक ही पत्नी थी - सीताजी। परन्तु अपने जैन 'रामायण' में ऐसा नहीं आया। जैन रामायण में तो उनके राणीवास में.....

मुमुक्षु :- रामचन्द्रजी का मृत्यु दिखाया है ?

पूज्य भाईश्री :- किसने ? उन लोगों में नहीं दिखाया और हम भी नहीं दिखाते हैं। वे लोग तो भगवान का अवतार मानते हैं इसलिये मृत्यु

का सवाल नहीं है। हिन्दु लोग तो चौबीस अवतारमें से उन्हें परमेश्वर का अवतार ही मानते हैं। परन्तु हमारे यहाँ तो वे उसी भव में मोक्ष पधारे हैं और अभी भी सिद्धालय में उनका आत्मा बिराजमान हैं ऐसा हमारा पुरान भी यही कहता है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- हाँ, वहाँ ऐसा आता है। हिन्दु 'रामायण' में इसप्रकार से आता है। जबकि हमारे जैन 'रामायण' में तो स्वयं मुनिदीक्षा अंगिकार करते हैं और स्वयं श्रेणी लगाकर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। केवलज्ञान की प्राप्ति करते हैं, अरिहंतदशा की प्राप्ति करके फिर सिद्धालय में गये हैं। इसतरह आता है।

हालाँकि, साधना का विषय वैसे तो बहुत गहरा है। कहने का मतलब उतना है। साधना का विषय बहुत गहन है। सामान्यरूप से लोग गुणस्थान की गिनती करके किसका नाप निकालते हैं - साधना का, वैसे नहीं होता। हालाँकि मुमुक्षु की भूमिका में इतनी समझ आना भी मुश्किल है। और इसतरह मुमुक्षु की भूमिकामें से ऊपर के गुणस्थानवाले का Judgement लेने से तो प्रायः असातना ही होती है। क्योंकि ऐसे महात्माओं की साधना का Judgement लेने की Capacity (क्षमता) या योग्यता मुमुक्षु में नहीं होती है। मुमुक्षु को नहीं होती।

ज्ञानदशा प्राप्त होने के बाद तो क्या है कि केवलज्ञान तक का ज्ञान हो जाता है। केवलज्ञान का स्वरूप भी सम्यग्दर्शन होने पर भास्यमान होता है। क्योंकि नौ तत्त्वों का ज्ञान हुआ न ? तो नौ तत्त्वों का भावभासनपूर्वक ज्ञान होता है। सम्यक्दृष्टि को नौ तत्त्वों का ज्ञान है या भावभासन है। मोक्ष कैसा होता है ? मुनिदशा कैसी होती है ? साधना कैसी होती है ? उसप्रकार ज्ञान होता है। भावभासन आता है।

२४३ नंबर का प्रश्न है। 'स्वानुभूतिदर्शन'

पन्ना नं.१४४ पात्र जीवों के मुख्य लक्षण। पात्रजीव यानी मुमुक्षु की पात्रता का विषय है। इसके मुख्य लक्षण कैसे होते हैं ? ऐसा प्रश्न पुछा है। उत्तर में कहते हैं।

'पात्र शिष्य को अंतर से आत्मा की ही लगन लगी होती है कि मुझे एक चैतन्य ही चाहिये, अन्य कुछ नहीं चाहिए।' सुबह अपनी यह बात चली थी कि जिसको एक आत्मा ही चाहिये - अपना स्वरूप ही चाहिये और जगतमें से अब कुछ नहीं चाहिये। इसके पीछे समझ ऐसी है कि परिभ्रमण कर रहे ऐसे हमारे आत्मा को प्रत्येक जाति के पुण्य के फल भी मिल चुके हैं और प्रत्येक जाति के पाप के फल भी मिल चुके हैं। पंच परावर्तन में कोई बात बाकी नहीं रही है। अब क्या लेना है तुझे ? जगतमें से जो मिलना था वह सारे संयोग तुझे मिल चुके। तेरे आत्मा में क्या आया ? कि तू तो कोरा का कोरा ही रहा। यह एक परिस्थिति है।

अब बाकी है तो एक आत्मकल्याण करना बाकी रहा है। अतः उस आत्मकल्याण की अंतर की जो भावना उत्पन्न हुई है वहाँ से पात्रता शुरू हुई और वैसी भावना किसी भी जीव को कभी भी उत्पन्न हो सकती है। ऐसा कोई नियम नहीं है कि पहले ऐसा हो तो ही भावना उत्पन्न होवे। शास्त्र पढ़ा हो तो तो होवे वरना नहीं हो ऐसा कुछ नहीं है। कोई व्रत, नियम या उपवास किये हो तो होवे ऐसा भी कुछ नहीं है। पूजा-भक्ति की हो या नहीं की हो इसके साथ कोई नियम नहीं है। दया-दान किये हो या नहीं किये हो इसका कोई नियम नहीं है।

किसी भी जीव को कभी भी जब ऐसी भावना उत्पन्न हो कि अनन्तकाल से मैं भटक रहा हूँ, अब ऐसी भटकन मुझे नहीं पुसाती है। अब मुझे छूट जाना है। इस परिभ्रमण से, इस जन्ममरण से और संसार के दुःखों से मुझे छूट जाना है।

कभी भी किसी भी जीव को ऐसी भावना हो सकती है। जब भी होती है तब तत्काल पात्रता का जन्म होता है। इसमें उधारी नहीं है कि ऐसे परिणाम अभी हुए इसका फल फिर दूसरे भव में आयेगा ऐसा भी नहीं है। इसीवक्त जीव को पात्रता प्रगट होती है।

अब जहाँ पात्रता प्रगट हुई यानी इसकी सुविचारणा चालू हुई। इसे 'कृपालुदेव' ने आत्मसिद्धि में सुविचारणा कही है। तो इसका लक्षण क्या ? कि, **'उसके प्रत्येक कार्य में आत्मा का ही प्रयोजन होता है, अन्य सब प्रयोजन उसे गौण रहते हैं।'** अतः जो भी उदय आये उसमें वह देखता है कि मेरे आत्मा को इससे लाभ है या नुकसान ? इस उदय में मेरे आत्मा को लाभ-नुकसान क्या है ? रस लेने से नुकसान। अतः मुझे रस लेना नहीं है। किये बिना छुटकारा नहीं है। उसे करना पड़ता है। वह पूर्वकर्म की सजा भोगने की बात है। सजा भोगने में वैसे भी नाराजगी नहीं दिखानी है। क्योंकि अपराध मेरा ही किया हुआ है। अतः पूर्वकर्म के उदय का अनुसरण करते हैं और इसका तो ज्ञानी भी अनुसरण करते हैं और वह खुद भी अनुसरण करता है। बस ! उनसे प्रयोजन आत्मा का रहता है। मेरे आत्मा को नुकसान न हो और लाभ हो - इस दृष्टिकोण को छोड़े बिना वह उदय में प्रवृत्ति करता है।

सुबह हमने दृष्टान्त लिया था कि, किसीको प्रवृत्ति करना अनिवार्य हो तो उसे करनी पड़ती है ऐसा जानकर करता है। लेकिन नहीं करने से भी चले ऐसा हो तो वह छोड़ देता है कि, मुझे क्या प्रयोजन है ? मुझे कोई आवश्यकता तो है नहीं फिर मुझे क्यों करना ? वैसे **'एक आत्मा की मुख्यता सहित ही उसके सर्व कार्य होते हैं।'** यह सुविचारणा का लक्षण है। हरएक कार्य में आत्मा को मुख्य रखता है। आहार लेते वक्त, खाते समय भी उसे वही बात स्मरण में आती है कि आत्मा को तो वास्तव में जरूरत नहीं है

परन्तु परिणाम को स्थितिस्थापक बनाये रखने के प्रयोजन जितनी बात है। परिणाम का Balance कहो, या स्थिति स्थापकता कहो, इतना पूरती ही बात है। पूर्व के ऐसे प्रकार के संस्कार है और आहारसंज्ञा इस भूमिका में मिटना असम्भव है। आहारसंज्ञा तो आठवें गुणस्थान से मिटने की परिस्थिति है। मुनिदशा में भी आहार लेने की परिस्थिति पैदा होती है तो मुमुक्षु को तो सवाल ही नहीं है। परन्तु इसका मतलब ऐसा नहीं है कि उसमें रस लेना। और आहारसंज्ञा मिटना संभव नहीं है इसलिये छूट मिल जाती है ऐसा भी नहीं है। वहाँ भी अपने प्रयोजन का विस्मरण नहीं होता। अपना प्रयोजन अच्छी तरह उनको स्मृति में रहता है - जागृति में रहता है।

अतः 'आत्मा की मुख्यता सहित ही उसके सर्व कार्य होते हैं। शुभभाव के कार्यों में भी उसे एक आत्मा का प्रयोजन होता है,...' शुभयोग के कार्य आये। स्वाध्याय, पूजा, भक्ति, दया-दान, यात्रा चाहे कुछ भी हो परन्तु प्रयोजन सब में एक आत्मा का है, शुभभाव का प्रयोजन नहीं है, पुण्य बाँधने का प्रयोजन नहीं है।

'अन्य कोई बाह्य प्रयोजन नहीं रहता।' देखो ! यह पात्रता के लक्षण में 'बहिनश्रीने सुविचारणा ली है। 'शुभभाव में देव-शास्त्र-गुरु की प्रभावना कैसे हो वैसे भाव आते हैं।' यानी कि धर्म की प्रभावना कैसे हो, ऐसे भाव भी मुमुक्षु की भूमिका में आते हैं। 'और आत्मा का प्रयोजन साथ होता है,...' फिर वह प्रवृत्ति में ऐसे नहीं जुड़ता कि खुद का प्रयोजन खो बैठे। देव-गुरु-शास्त्र अथवा धर्म प्रभावना के कार्य जो होते हैं उन कार्यों में शुभभावसहित जुड़ने का होता है लेकिन आत्मा का प्रयोजन लक्ष में रखकर।

'आत्मा का प्रयोजन साथ होता है, अन्य कोई प्रयोजन नहीं होता।' इसमें कोई दूसरा प्रयोजन नहीं होता अतः क्या है कि धर्म प्रभावना के कार्य

करने से एक सामाजिक परिस्थिति पैदा होती है जिसमें प्रभावना के कार्यों में तो समाज के Stage पर आना पड़ता है और प्रायः लोग वहीं से चूकते हैं। तब पूरा Motive (हेतु) बदल जाता है। प्रवृत्ति का Motive इसमें मान, स्थान ये सब खड़ा हो जाता है। और वहीं से वापिस गिरता है।

जबकि पात्र जीव होता है उसको अन्य कोई प्रयोजन नहीं होता। कोई प्रयोजन नहीं। मुझे मेरे आत्मकल्याण के अलावा कोई प्रयोजन नहीं है। वह इसलिये कि ये धर्म, वीतरागधर्म जो है वह फैले, अनेकों जीवों को लाभ हो इसके लिये जो कुछ भी करना पड़े वह समर्पित होकर कर देता है। इससे ज्यादा कुछ भी लक्ष में रखे बिना प्रवृत्ति करता है। और कोई प्रयोजन नहीं होता।

'लौकिक प्रयोजन से अत्यन्त न्यारा रहता है।' लौकिक प्रयोजन को बहुत दूर रखता है। बहुत लोग इसमें शामिल हो इससे मुझे कोई वास्ता नहीं है। किसी से मेरा कोई निस्बत नहीं है। जिसकी योग्यता होगी, जिसको जिस अनुपात में लाभ मिलना होगा वह मिले। मुझे तो मेरा आत्मकल्याण को मुख्य रखते हुए योग्य हो सो हो, नहीं होने योग्य होगा सो नहीं होगा। जाओ ! न्यारा ही न्यारा। अंतरंग से न्यारा ही न्यारा रहता है।

अथवा इतनी अर्पणता की है सो मेरा भी कोई अधिकार बनता है सो बात का भी कोई स्थान नहीं है। वरना ऐसी बात आगे आ जाती है कि हमने तो इतनी अर्पणता की है इसलिये हमारा अधिकार बनता है। कुछ नहीं न। हमने तो हमारे आत्मकल्याण को लक्ष्य में रखकर धर्म प्रभावना की भावना भायी थी, फिर जो होना था सो हुआ इससे ज्यादा हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। जो हुआ इसके साथ भी सम्बन्ध नहीं है जो नहीं हुआ इसके साथ भी सम्बन्ध नहीं है।

मुमुक्षु :- हम उदय के वक्त Balance नहीं रख पाते। चूक जाते हैं।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, तभी तो गड़बड़ हो जाती है।

मुमुक्षु :- तो उस वक्त क्या करना ?

पूज्य भाईश्री :- बस ! एक ही लक्ष्य रखना है। मुझे मेरे आत्मकल्याण के सिवा कोई प्रयोजन मेरा नहीं है। प्रयोजन का दृष्टिकोण छूट गया, खत्म हो गई बात। मुमुक्षुता प्राप्त होने में और मुमुक्षुता वर्धमान होने में एक ही Point है इसका, एक ही Master Key इसकी कि हमको मेरा आत्मकल्याण करना है इसके सिवा कुछ नहीं करना है। और जो भी कुछ करना है तो उसको मुख्य रख करके करना है, बस ! वह चूकेगा नहीं, वह भूलेगा नहीं। वरना भूल हो जायेगी। कहीं भी Balance out हो जायेगा।

‘लौकिक प्रयोजन से अत्यंत न्यारा रहता है। उसे तो एक आत्मा की ही लगन लगी है।’ यह एक ऐसी परिस्थिति है कि वह खुद अपने आत्मकार्य के पीछे एक लगन से, एक निष्ठा से, एक लय से लगता है जिसे लगन कहते हैं। अन्य बहुत से इधर-उधर के परिणाम उत्पन्न नहीं होने में कारणभूत होती है। सुबह Walking में ही हमारी चर्चा चली थी। भाई ! ऐसे परिणाम हो गये, ऐसे परिणाम हो जाते हैं ऐसे परिणाम हो जाते हैं, क्या वजह है ? कि अपनी लगन नहीं लगी है इसलिये। खुद के कार्य में जो लग जाये उसको कुछएक अहितकारक परिणाम उत्पन्न होने का scope ही नहीं रहता, अवकाश ही नहीं रहता। क्योंकि उसे खुद के कार्य से फुरसत मिले जब तो दूसरा कुछ करे न ! जिसे कुछ काम नहीं वह गड़बड़ कर बैठता है। खुद का काम नहीं करता और दूसरा कोई काम नहीं करता इसलिये दूसरी ओर परिणाम भागदौड़ किया करते हैं।

मूल में क्या है कि अंदर उदय में जुड़ता है। उदय तो सभी को चालु ही है, लेकिन इस लगनीवाले जीव को क्या है कि वह उदय में जुड़ता नहीं, वह लगनी में

जुड़ा रहता है। हम लोस एन्जलस में घुमने निकले थे तब एक बात चली थी कि मोक्षमार्ग अनउदयी परिणामी हैं, अनउदय परिणाम हैं और मुमुक्षु की भूमिका में अनउदय परिणाम चालु होते हैं वह ऐसी दूसरी जाति के होते हैं। जब से (परिभ्रमण की) वेदना शुरू होती है, लगन लगती है तब से उसे अनउदयभाव शुरू हो जाते हैं। वह सहज-सहज ही उदय में जुड़ता नहीं। क्योंकि वह अपने काम में लगा रहता है। बस ! यह काम इस जाति का है।

उदय में जुड़ा कि बंध पड़ा। बंध कहाँ पड़ा ? उदय में जुड़ा इसलिये। उदय में जुड़ा नहीं तो नवीन बंध होता अटक गया। फिर भले ही यह मोक्षमार्ग के परिणाम नहीं हो, फिर भी मुमुक्षुता में उसे जो बंध पड़ता है वह इस जाति का पड़ता है कि जिसमें मोक्षमार्ग में आगे बढ़ने की सभी प्रकार की सानुकूलताएं प्राप्त होती रहती है। उसे सत्पुरुष आदि का योग मिलता है, सत्संग विशेष मिलता है, उसे तीर्थकर आदि का समवसरण मिलता है और सब इसी प्रकार से होता है।

यहाँ तीर्थकरदेव का युग २५०० वर्ष पूर्व समाप्त हो गया, अब तो कोई २५वें तीर्थकर नहीं होंगे। अब तो आगामी चौबीसी पर बात चली गई-चौथे आरे में। यहाँ तो सभी को ५०-१०० वर्ष का आयुष्य पूर्ण करना है और वह तो हजारों वर्ष बाद की बात है। इस प्रकार यहाँ से भावना लेकर (स्वर्ग में जाता है) तो वहाँ सीधी युवा अवस्था है। इसलिये उसे कुछएक वर्ष के बाद चलना इत्यादि हो ऐसा कुछ नहीं है। वह तो सीधा ही उपयोग रखता है। वहाँ अवधिज्ञानी होते हैं, उपयोग रखता है कि, मैं कहाँ से आया हूँ ? क्या हुआ ? किस भावना से यह देवपद मिला ? किस प्रकार के भाव हुए थे कि यहाँ आना हुआ ? फिर उसे उसकी भावना के साथ अनुसंधान हो जाता है कि चलो ! क्रोड़ों देव समवसरण में जाते हैं, वह खुद भी चला जाता है। उसका कारण क्या है ? कि उसे यहाँ उसी प्रकार के भाव होते हैं। उदय में जुड़ता नहीं। आत्मा में भी जुड़ा नहीं। क्योंकि मुमुक्षु को अभी आत्मा का पता नहीं

लगा। उदय में जुड़ा नहीं, अनउदय परिणाम हुए। दूसरे जो परिणाम हुए उसमें यह परिस्थिति उत्पन्न होती है। आत्मा में उपयोग लगने के लिए ऐसे सब प्रकार उसे उत्पन्न हो जाते हैं और वह मोक्षमार्ग में आ जाता है।

मुमुक्षु :- भाईश्री ! संसार...

पूज्य भाईश्री :- संसार की रुचि नहीं रही न ? संसार की रुचि नहीं रही। संसार की रुचि नहीं रहने से आत्मरुचि में जो भी शुभभाव होगा, एक तो शुभभाव होगा उसके फल में उसे इस प्रकार के संयोग मिलेंगे। और आत्मरुचि के फल में उसका मिथ्यात्व मंद होगा। मतिज्ञान में आत्महित का विवेक जागृत हो जायेगा और कषायरस मंद हो जायेगा।

मुमुक्षु :- हमारा प्रश्न यह है कि जो भी उदय आता है तो लक्ष्य चूक जाता है और...

पूज्य भाईश्री :- जुड़ जाता है।

मुमुक्षु :- अभिप्राय में ...

पूज्य भाईश्री :- नहीं, अभिप्राय में एक बहुत सीधीसादी Simple बात है कि हमको जैसे-तैसे भी आत्मकल्याण करना है, हमारा कोई दूसरा प्रयोजन नहीं है। संसार में भी हमारा दूसरा प्रयोजन नहीं है और धार्मिक क्षेत्र में भी हमारा कोई दूसरा प्रयोजन नहीं है। हमें एक ही प्रयोजन है कि, हमें हमारा आत्मकल्याण (करना है), मनुष्यत्व का जो भी हमारे हाथ में शेषकाल है, शेष जीवन है, उसमें यही कर लेना है। बस ! उसकी लगन लगी तो और सब दूसरे-दूसरे परिणाम स्वतः पेदा ही नहीं होंगे। बस ! इससे बढ़िया बात कौन-सी है ? वह बात अपने आप है।

मुमुक्षु :- आत्मा का अवलंबन नहीं है तब तक तो ...

पूज्य भाईश्री :- आत्मा का अवलंबन आवे वह तो आगे की बात है, इसके पहले आत्मकल्याण की भावना का अवलंबन रहता है। आत्मकल्याण की जो भावना है, इस भावना की तीव्रता रहती है तो वह प्राथमिक भूमिका में वही काम करती है। फिर आत्मा का जब

भावभासन होता है तो आत्मा का अवलंबन आता है। वह तो आगे जाकरके आयेगा।

मुमुक्षु :- शुरुआत में ?

पूज्य भाईश्री :- शुरुआत में तो भावना का बल होना चाहिये कि हमको एक आत्मकल्याण कर लेना है, हमारी दूसरी कोई भावना नहीं है। उस भावना के वशात् जो भी करना है, वह करना है। बस ! इसकी लगनी है वह दूसरे परिणाम को उत्पन्न नहीं होने देगी। यह फायदे की बात है। लगन लगनी चाहिये, बस !

यह बात वे अपने अनुभव से करती हैं। पन्द्रह साल की उम्र में उनको लगन लगी। देखा कि इधर परिस्थिति है नहीं। सत्संग ही नहीं है तो आत्मकल्याण कैसे होगा ? तो एक सत्संग जुटाने के लिये उन्होंने गृहत्याग कर दिया। यह उनका Drasting Step है। इतनी हिंमत से उन्होंने घर छोड़ा है। पन्द्रह साल की उम्र में कोई लड़की घर से भाग जाये तो उसकी हिंमत कितनी ? और वह भी उस जमाने में। आज से ८० साल पहले कि बात है। उन्होंने एक ही बात निश्चित की थी कि अब मुझे आत्मकल्याण के सिवा और कुछ करना नहीं है। यह करांची में ऐसी परिस्थिति नहीं है कि सत्संग मिले, कोई साधु-संत मिले, कोई गुरु मिले। काठियावाड में वापस आ गये।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- लगनी होनी चाहिये,

मुमुक्षु :- किसकी बात कही ?

पूज्य भाईश्री :- बहिनश्री की। चंपाबहिन है उनकी यह चर्चा है।

मुमुक्षु :- सोनगढ़ में ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ ! सोनगढ़ में। उन्होंने पन्द्रह साल की उम्र में घर छोड़ दिया था। वैसे तो पहले के जमाने में छोटी उम्र में शादी हो जाती थी इसलिए चौदह साल की उम्र में उनकी शादी हो गई थी लेकिन उन्होंने ससुराल में रहने की ना कही थी। और उस जमाने में ऐसा था कि किसी-किसी के साथ ऐसा बनता है कि छोटी उम्र में शादी हो जाये और ससुराल

में नहीं रहे तो एक-दो साल उसे मायके छोड़ देते हैं, फिर उसे ससुराल भेजते हैं। इसलिए उसकी मानसिक परिस्थिति की इस प्रकार से तैयारी हो जाती है। वहाँ उनकी बड़ी बहन रहती थी। एक ही मकान में Ground Floor में उनका ससुराल था और दूसरे-तीसरे मझले पर उनकी बड़ी बहन रहती थी। माताजी का तो बचपन में स्वर्गवास हो गया था और पिताजी यहाँ वढवाण गाँव में रहते थे। पिताजी, भाई और वे स्वयं। दो भाई और दूसरी कोई छोटी-मोटी बहन होगी। वे स्वयं करांची में बहन के यहाँ रहने लगे। फिर उनके विचार आत्मकल्याण की ओर के हो गये। परिस्थिति अनुकूल नहीं दिखी इसलिए बहन का घर भी छोड़ दिया। यदि बहन के घर रहे तो जबरदस्ती उन्हें ससुराल जाने कि परिस्थित खड़ी होनेवाली थी और फिर तो संसार में फँस गये यानी फँस गये।

इसलिए उन्होंने एक निर्णय ले लिया कि करांची में रहना ही नहीं है। उन्हें सरलता से कोई हाँ भर दे ऐसा तो नहीं था। क्योंकि शादी हो चुकी थी। इसलिए घर छोड़कर निकल गये। पहने हुए कपड़े में ऐसी ही गाड़ी में बैठ गये। डेढ़ दिन का सफर बिना खाये-पीये ही कर लिया। घर के बाहर कभी अकेले नहीं निकले थे। स्टेशन जाकर टिकट कैसे लेना उसकी खबर नहीं थी। उनके पास पैसे नहीं थे फिर भी उस दिन क्या हुआ कि, बड़ी बहन के पास पैसे मांगे की मुझे थोड़े पैसे दो। बहनने पूछा नहीं कि, तुझे किस लिए पैसे चाहिये ? इसतरह उन्होंने टिकट के लिये पैसे लिये थे। करीब दस-ग्यारह-बारह बजे का ट्रेन का टाइम होगा और वे घर पर रोटी बेल रहे थे। घड़ी के सामने देख रहे थे कि कब निकलना ? कब निकलना ? किसीकी उपस्थिति में तो निकल नहीं सकते थे इसलिए एकांत ढूँढ़ रहे थे, उसमें बराबर मौका मिल गया। रोटी बेलते-बेलते भागे हैं। सीधे स्टेशन गये, बाहर निकले तो उन्हें ऐसा लगा कि टाइम तो हो गया है, इसलिए थोड़ी जल्दी से चलकर घोडागाड़ी कर लूँ ? वहाँ तो सब मुस्लिम घोडागाड़ीवाले थे इसलिए ऐसा लगा कि कौन-सा

आदमी कैसा होगा ? छोटी उम्र है इसलिए उन्हें विश्वास नहीं आया, घोडागाड़ी में नहीं बैठे। उतावली से चलकर स्टेशन पहुँच गये, गाड़ी के समय पर पहुँच गये। वहाँ कोई वृद्ध गुजराती पति-पत्नी खड़े थे। उन्हें ऐसा लगा कि यह लोग लाइन में खड़े हैं तो उन्हीं को टिकट के लिए कह दूँ। इसलिए उन्होंने बहिन को कहा, चाची, चाचा को कहीये न कि मेरा वढवाण का टिकट ले लें, यह लो पैसे। इसप्रकार टिकट ले लिया। वे लोग भी काठियावाड में कहीं जानेवाले होंगे इसलिए उनके साथ डिब्बे में बैठ गये। वे लोग खाने-पीने का आग्रह करते थे लेकिन कुछ लेते नहीं थे। मुझे कुछ नहीं लेना, मेरी इच्छा नहीं है, मुझे भूख नहीं लगी है, मेरी इच्छा नहीं है। रात और दिन ऐसे ही बैठे रहे। उन्हें चिन्ता यह हो गई कि गाड़ी रात को बारह बजे वढवाण पहुँचेंगी। यह सब बातें उन्होंने मुझे कही थी।

मैंने उन्हें पूछा था कि, आपने पन्द्रह वर्ष की उम्र में; आपका स्वभाव तो नरम है, कोई जोरावर लड़की हो तो कोई भी कदम उठाले, लेकिन आप तो ऐसे शांत और नरम प्रकृति के हैं फिर भी आपने इतना साहस किया इसके पीछे आपके विचारों की पार्श्वभूमिका क्या थी ? उन्होंने कहाँ सत्संग की इच्छा बहुत तीव्र थी, आत्मकल्याण की भावना थी, और वहाँ कुछ हो सके ऐसा नहीं था इसलिए इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं था।

रात को बारह बजे वढवाण आता है और वढवाण की चोतरफ एक किला है उसके दरवाजे बंद हो जाते हैं। क्या करना ? स्टेशन पर तो रात को अकेले नहीं रह सकते, करूँगी क्या ? क्या करूँ ? क्या करूँ ? कैसे करूँ ? ऐसे विचार चल रहे थे। इसलिए ऐसा विचार आया कि वढवाण के पहले सुरेन्द्रनगर आये तब वहाँ उतर जाना और वहाँ बुआ का घर है। एकाद घण्टे पहले यानी कि ग्यारह बजे आ जायेगा तो उनके घर चले जायेंगे। ऐसा विचार किया था।

अब वहाँ करांची के घर में क्या परिस्थिति हुई कि वहाँ पता चला कि उन्होंने घर छोड़ दिया है और

उनका पता नहीं है। इसलिए उन्होंने सभी जगह सगे-संबंधी के घर तार कर दिये कि यहाँ से निकल गये हैं और कहाँ गये हैं इसकी खबर हमें दिजीये। इसलिए वढवाण भी उनके पिताश्री के यहाँ तार गया था कि यह निकल गई हैं। इसलिए उन्हें लगा कि ये आयेगी तो यहीं, और कहीं नहीं जायेगी। कहीं जायंगी तो यहाँ पिताजी के घर ही आयेगी। उनके पिताश्री महेसाणा सामने लेने गये; महेसाणा तक गये। अकेली आ रही है, रात हो जायेगी, शाम को महेसाणा स्टेशन पर मिल गये। इसलिए उन्हें फिर कोई उलझन नहीं रही की रात को क्या होगा ? फिर घर ले गये थे। बस ! तत्पश्चात् उन्होंने निर्णय कर लिया कि अब मेरे लिये कोई कुछ (मत करना)। मुझे तो धार्मिक जीवन ही व्यतित करना है। उसमें फिर गुरुदेव का योग हो गया। भावना थी तो ज्ञानी का योग मिल गया। वह उदय उन्हें बहुत जल्दी आ गया। बहुत तीव्र भावना थी इसलिए गुरुदेव सोनगढ़में settle हुए तो वे भी सोनगढ़ में settle हो गये। वे फिर अन्य कोई जगह में नहीं रहे। सोगनढ़ में किराये के मकान में रहने लगे थे। आश्रम का निर्माण तो बाद में हुआ, बहनों का जो आश्रम बना है, श्राविका आश्रम है। उस वक्त तो वे किराये के मकान में रहने लगे थे। इसलिए कुटुम्बीजनोंने भी इनके (निर्णय में) दखल अंदाजी नहीं की। उन्हें जो करना है करने दो। और ऐसी कुदरती अवस्था है कि भावना होती है तो दिक्कत नहीं आती।

‘लौकिक का, बाह्य का या बड़प्पन का कोई प्रयोजन नहीं रहता।’ वह जो भी प्रभावना के कार्य करता है उसमें लोक में कीर्ति बढ़े ऐसा लौकिक प्रयोजन नहीं होता। क्योंकि जो काम करता है उसे यश भी मिलता है और कभी अपयश भी मिलता है। इसप्रकार दोनों ही मिलते हैं। लेकिन ऐसा कोई प्रयोजन नहीं होता। यश मिले या अपयश मिले, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। वह तो अपने काम में लगा हुआ है।

‘बाह्य का या बड़प्पन का कोई प्रयोजन नहीं

रहता। मेरे आत्मा को कैसे लाभ पहुँचे वह एक ही प्रयोजन आत्मार्थी को होता है।’ बस ! यह पात्रता का स्वरूप है। ‘श्री जिनेन्द्रदेव जिन्होंने साधना प्रगट की है ऐसे उपकारी गुरु तथा शास्त्र की प्रभावना कैसे हो ऐसी उसे प्रीति होती है।’ वह सब काम प्रेम से करता है, प्रीति से करता है। क्योंकि स्वयं का आत्मकल्याण भी ऐसे ही कोई प्रभावना योग में हुआ है। इसलिए दूसरे अनेक जीवों को प्रभावनायोग में आत्मकल्याण होने का मौका संप्राप्त होता है। इसप्रकार की समझ स्वयं को होने से वह सब कार्य प्रीति से करता है।

‘जिन्होंने आत्मा का मार्ग बतलाया, उसकी प्राप्ति हेतु मार्गदर्शन दिया और जिनका परम उपकार है उनकी प्रभावना कैसे हो, वैसा हेतु पात्र शिष्य को होता है,...’ उसके जो उपकारी गुरु होते हैं वे गुरु भी प्रभावना करते हैं इसलिए स्वयं को लाभ हुआ है तो उनकी प्रभावना अधिक से अधिक कैसे हो ? इसलिए स्वयं भी इतना विचार रखता है कि मुझे मार्ग बतलाया, मुझे उनसे मार्गदर्शन प्राप्त हुआ और मुझ पर उनका अत्याधिक उपकार है और उपकार के सामने क्या हो सकता है ? कि उनकी जो बाह्य प्रभावना की प्रवृत्ति है उसमें स्वयं भी तन-मन-धन से, मन-वचन-काया से समर्पण करके और स्वयं भी उस प्रभावना में जुड़ता है ऐसा उसका हेतु होता है और उसमें भी आत्मकल्याण को मुख्य रखकर, अपने आत्मकल्याण को गौण करके नहीं।

‘अन्य कोई हेतु नहीं होता। यह पात्र जीव का लक्षण है।’ अर्थात् पात्रता में एक चाबी दे दी कि आत्मकल्याण की मुख्यतारूप प्रयोजन है वह छूटना नहीं चाहिये। बस ! बाकी सब कुछ गौण हैं। उसके सामने और सबकुछ गौण ही हैं। दूसरी- Second Priority देव-गुरु-शास्त्र-धर्म की प्रभावना की। बस ! स्वयं का आत्मकल्याण करते-करते उसे साधते-साधते अन्य जीवों का भी आत्मकल्याण हो। जितना कुछ हो सके उतना कर लेना। बस !

२४३ प्रश्न पूरा हुआ।

४६५

बंबई, श्रावण वदी ५, १९४९

ॐ

परमस्नेही श्री सोभाग,

यहाँ कुशलक्षेम समाधि है। थोड़े दिनके लिये मुक्त होने का जो विचार सूझा था, वह अभी उसी स्वरूपमें है। उससे विशेष परिणामको प्राप्त नहीं हुआ। अर्थात् कब यहाँ से छूटना और किस क्षेत्र में जाकर स्थिति करना, यह विचार अभी तक सूझ नहीं सका। विचार के परिणाम की स्वाभाविक परिणति प्रायः रहा करती है। उसे विशेषता से प्रेरकता नहीं हो सकती।

गत वर्ष मगसिर सुदी छठको यहाँ आना हुआ था, तबसे आज दिवसपर्यंत अनेक प्रकार के उपाधियोग का वेदन करना हुआ है और यदि भगवत्कृपा न हो तो इस कालमें वैसे उपाधियोगमें धडके ऊपर सिरका रहना कठिन हो जाये, ऐसा होते होते अनेक बार देखा है; और जिसने आत्मस्वरूप जाना है ऐसे पुरुष का और इस संसार का मेल न खाये, ऐसा अधिक निश्चय हुआ है। ज्ञानीपुरुष भी अत्यंत निश्चयात्मक उपयोग से वर्तन करते करते भी क्वचित् मंद परिणामी हो जाये, ऐसी इस संसार की रचना है। यद्यपि आत्मस्वरूप संबंधी बोध का नाश तो नहीं होता, तथापि आत्मस्वरूप के बोध के विशेष परिणाम के प्रति एक प्रकार का आवरण होनेरूप उपाधियोग होता है। हम तो उस उपाधियोग से अभी त्रास पाते रहते हैं, और उस उस योग में हृदय में और मुखमें मध्यमा वाचासे प्रभु का नाम रखकर मुश्किल से कुछ प्रवृत्ति करके स्थिर रह सकते हैं। सम्यक्त्व में अर्थात् बोध में भ्रांति प्रायः नहीं होती, परंतु बोधके विशेष परिणाम का अनवकाश होता है, ऐसा तो स्पष्ट दिखायी देता है। और उससे आत्मा अनेक बार आकुलता-व्याकुलता को पाकर त्याग का सेवन करता था; तथापि उपार्जित कर्मकी स्थिति का समपरिणाम से, अदीनतासे, अव्याकुलता से वेदन करना, यही ज्ञानीपुरुषों का मार्ग है, और उसीका सेवन करना है, ऐसी स्मृति होकर स्थिरता रहती आयी है, अर्थात् आकुलादि भावकी होती हुई विशेष घबराहट समाप्त होती थी।

जब तक दिन भर निवृत्ति के योगमें समय न बीते तब तक सुख न रहे, ऐसी हमारी स्थिति है। 'आत्मा आत्मा,' उसका विचार, ज्ञानीपुरुष की स्मृति, उनके माहात्म्य की कथावार्ता, उनके प्रति अत्यंत भक्ति, उनके अनवकाश आत्मचारित्र के प्रति मोह, यह हमें अद्यापि आकर्षित किया करता है, और उस कालकी हम रटन किया करते हैं।

पूर्वकाल में जो जो ज्ञानीपुरुष के प्रसंग व्यतीत हुए हैं उस काल को धन्य है; उस क्षेत्र को अत्यंत धन्य है; उस श्रवणको, श्रवण के कर्ता को और उसमें भक्तिभाववाले जीवों को त्रिकाल दंडवत् है। उस आत्मस्वरूपमें भक्ति, चिंतन, आत्मव्याख्याता ज्ञानीपुरुष की वाणी अथवा ज्ञानी के शास्त्र या मार्गानुसारी ज्ञानीपुरुष के सिद्धांत, उसकी अपूर्वता को अतिभक्ति से प्रणाम करते हैं। अखंड आत्मधुन के एकतार प्रवाहपूर्वक वह बात हमें अद्यापि भजने की अत्यंत आतुरता रहा करती है; और दूसरी ओर से ऐसे क्षेत्र, ऐसा लोकप्रवाह, ऐसा उपाधियोग और दूसरे दूसरे वैसे वैसे प्रकार देखकर विचार मूर्च्छावत् होता है। ईश्वरेच्छा !

प्रणाम प्राप्त हो।



द्रव्यदृष्टि प्रकाश पत्रांक-२७ पर पूज्य भाईश्री शशीभाई का प्रवचन, दि.५-८-१९९१

श्री सद्गुरुदेवाय नमः

धर्मस्नेही... शुद्धात्म सत्कार।

'आपका कार्ड व पत्र मिले। मानस्तंभके शुभ प्रसंगपर भी मैं वहाँ नहीं आ सकूँगा, इसका कारण पत्रके साथ भेजी गई शादीकी पत्रिकासे मालूम होगा ! बड़े पुत्रकी शादी ता. १६-४ की है;...' उनके वहाँ अप्रैलमें लग्न प्रसंग था। 'पुण्यवानोंको शुभप्रसंगका योग है;...' यानीकि आप सभी पुण्यशाली हैं, (ऐसा कहते हैं)। आपको शुभ प्रसंगका योग है (अर्थात्) आपको गुरुदेवके प्रवचन (सुनने) मिलते हैं, सत्संग मिलता है, आप सभी पुण्यशाली हैं कि आपको गुरुदेवका सत्संग मिलता है। 'उन्हें अशुभप्रसंग पर बुलाना ठीक नहीं है;...' यानी कि मेरे घर तो यह अशुभ प्रसंग है। कैसा (प्रसंग है) ? लग्नका अशुभ प्रसंग है, ऐसा कहते हैं। लौकिकदृष्टिसे भले ही उसमें शुभप्रसंग और मांगलिक प्रसंग ऐसा-ऐसा लिखा जाता है, किन्तु धर्मदृष्टिसे यह अशुभ प्रसंग है।

मुमुक्षु :- दुर्घटना है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, दुर्घटना कहो, चाहे अशुभ प्रसंग कहो।

मुमुक्षु :- घरवालें ऐसा सुन ले तो पकड़कर मारे !

पूज्य भाईश्री :- प्रसंगपर ऐसा बोल देवें तो मनदुःख हो जाये। ऐसा प्रसंग घरमें हो और कुछ बोल देवें तो मनदुःख हो जाये। ऐसी बात क्यों करते हो ? ऐसा कहेंगे। उन्होंने तो प्रसंगपर ही लिखा है - शादीके प्रसंगपर ही लिखा है। १६-४ के दिन शादी है और ९-४का पत्र है, एक हफ्ते पहले पत्र लिखा है। साथमें वह लग्न पत्रिका भेजी है न ! 'उन्हें अशुभप्रसंगपर बुलाना ठीक नहीं है, फिर भी लौकिक व्यवहारवश दो पत्रिकाएँ भिजवाई हैं।

'वहाँसे आये पश्चात्...' फिर तो हर साल आते थे न ! १९५९के बाद हर साल (सोनगढ़) आते थे। इसलिए लिखते हैं कि, 'वहाँसे आये पश्चात् परिणति

कीचड़में ही फँसी रहती है;...'

ये शादीका काम आया, व्यापार-धंधा ये सब कीचड़ हैं। वहाँसे आनेके पश्चात्, सोनगढ़से आनेके बाद परिणति तो कीचड़में फँसी हुई रहती है। 'जैसी योग्यता है वैसे ही निमित्तों मध्ये रहना

हो रहा है।' मेरी योग्यता इतनी हीन है कि मुझे ऐसे हलके निमित्तोंके बीच रहना पड़ता है। देखो ! कितनी सरलता है !! मेरी योग्यता हीन है। जैसी योग्यता है ऐसे निमित्तोंके बीच रहना पड़ता है। कोई मुफ्तमें रहना नहीं पड़ता। मैं ऐसे पूर्वकर्म करके आया हूँ। ऐसी योग्यता है इसलिए रहना पड़ता है।

मुमुक्षु :- यह उपयोगकी बात नहीं करके परिणतिकी बात क्यों की है ?

पूज्य भाईश्री :- उपयोगमें तो फर्क पड़ता है न ! हररोज ध्यानमें तो बैठते ही हैं, वैसे उपयोगमें तो फर्क पड़ता है न ! परिणतिमें चालू रहता है (अर्थात्) ये सब काम चालू रहते हैं।

मुमुक्षु :- तो क्या परिणतिमें भी ऐसे दो भाग हो जाते हैं ?

पूज्य भाईश्री :- हो जाते हैं।

मुमुक्षु :- लेकिन परिणतिको तो श्रद्धाका अवलंबन है फिर दो भाग कैसे पड़ते हैं ?

पूज्य भाईश्री :- (परिणतिको भले ही) श्रद्धाका अवलंबन हो परंतु चारित्रगुणकी परिणति है न ! चारित्रगुणकी भी परिणति है न ! (कोई राग) अधिक समय चले, अधिक समय तक चालू रह जाये, बिना विकल्प भी अधिक समय तक चल जाये, जब तो वह परिणतिमें जायेगा न ! भले ही कायम न रहे, कभी छूट जाये, वह चालू नहीं रहता। परंतु अभी इन दिनों ये प्रकार ज्यादा चलता है, ऐसा कहते हैं। परिणति और उपयोगका



विषय यहाँ नहीं लेना है। सामान्यतया ज्यादातर परिणाम (ऐसे चलते हैं)। यहाँ ऐसा कहना है। यहाँ लक्ष्य परिणतिकी बात नहीं लेनी है। परिणामके अधिकतर भागको परिणति कही।

‘प्रत्यक्ष दुःखसमूहमें वेदन चलता है, परंतु एक ही झटकेमें हटना नहीं होता है।’ (अर्थात्) दुःखके समूहका प्रत्यक्ष वेदन चलता है। ये सारे जो परिणाम, संसारके जो कार्य हैं, उनमें दुःख नहीं (परंतु) दुःखका समूह है। अनुमान नहीं है, प्रत्यक्ष (वेदन) है, वेदनमें आता है फिर भी एक ही झटकेमें भिन्न नहीं हो सकता। इसका मतलब ऐसा हुआ कि एक ही झटकेमें भिन्न होनेका भाव आ जाता है परंतु हो नहीं पाता। **‘परंतु एक ही झटकेमें हटना नहीं होता है।’**

मुमुक्षु :- भरत चक्रवर्तीको एकही झटकेमें छूट गया था ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, एक ही झटकेमें (छूट गया था।) दीक्षा लेते वक्त तो एक ही झटकेमें छोड़ते ही हैं न ! तब कहाँ संबंध रखते हैं। सूक्ष्म संबंध भी नहीं रखते। **‘सर्व संबंधनुं बंधन तीक्ष्ण छेदीने...’** क्या (लिखते हैं) ? संसारके तीक्ष्ण बंधनका छेद करके। (कृपालुदेवने) **‘अपूर्वअवसर’** (काव्यमें) लिया न !

मुमुक्षु :- इतने तीव्र पुरुषार्थीको भी हटनेमें तकलीफ होती है, तो मुमुक्षुको कितनी तकलीफ होगी ? ये कुछ कह नहीं सकते।

पूज्य भाईश्री :- फिर भी, वे भी एकबार मुमुक्षु थे। वे भी एकबार मुमुक्षु थे न ? मुमुक्षु थे तब कोई अनुकूलताएँ थी, ऐसा तो नहीं था। मुमुक्षु थे तब भी प्रतिकूलता ही थी और बादमें दुकान बंद करनी पड़ी। अजमेरमें अपनी दुकान - व्यवसाय बंद करके आर्थिक कारणवश ही कलकत्ता आये हैं। कलकत्ता कोई घूमने-फिरने नहीं आये थे। आर्थिक कारणवश आना पड़ा है। आदमी अपना गाँव छोड़कर (शहर) कब जाता है ? गाँव छोड़कर परदेश कब जाता है ? कि जब देशमें निर्वाह न चलता हो तब परदेश जाता है, ये तो सीधी बात है। देशमें निर्वाह चल जाता हो तब तक कोई परदेश-गमन नहीं करता।

इसका कारण है, क्योंकि सगे-संबंधी, स्नेही, मित्र सब देशमें होते हैं। उन सबको छोड़कर किसको जाना रुचे ? सीधी बात तो यह है। बंबईमें तो आज भी लोग चर्चा करते हैं। क्योंकि बंबई तो एक टापू था। बंबईमें, कोई पहलेसे वहाँका रहनेवाला है ही नहीं। क्योंकि वह तो पूरा टापू था। ये तो अभी इतनी बस्ती हो गई। वरना तो अधिकांश जंगल था और थोड़े मकान थे। कोई कहे, यहाँ बंबईमें क्यों आये ? तो कहेंगे देशमें निर्वाह मुश्किल हुआ इसलिए यहाँ आये। सीधी बात है।

‘प्रत्यक्ष दुःखसमूहमें वेदन चलता है, परंतु एक ही झटकेमें हटना नहीं होता है। रस बिलकुल नहीं है,...’ ये बड़ी बात है। **‘रस बिलकुल नहीं है, खेद वर्तता है। फिर भी इधरसे निवृत्तियोग नहीं बैठता;...’** फिर भी बाहरमें निवृत्तियोग नहीं बैठता है, (ऐसा कहते हैं)। कहीं भी रस नहीं है, बहुत खेद होता है, परंतु बाहरमें निवृत्तियोग प्राप्त नहीं होता है।

मुमुक्षु :- मुझे तो यही कहना है कि, उनको रस नहीं है और इतना पुरुषार्थ होने पर भी झटका नहीं लगता है। जब कि यहाँ मुमुक्षुको रस है फिर कैसे पुरुषार्थ जागृत होगा ?

पूज्य भाईश्री :- उसका तो पुरुषार्थ जागृत होगा ही नहीं। जिसको रस है उसका तो पुरुषार्थ होनेका प्रश्न ही नहीं। वह तो डूब ही जायेगा, रसमें सराबोर हो जायेगा। **‘फिर भी इधरसे निवृत्तियोग नहीं बैठता; यह भी पूर्व कर्माकी दैन ही है।’** (यानी कि) वह पूर्व कर्मकी दैन है।

मुमुक्षु :- रस कैसे मंद हो ? रस कैसे टूटे ? पूज्य भाईश्री :- नुकसान देखे तो (टूटे)। नुकसानका विचार करें, नुकसानको देखे तो रस मिटे। रस क्यों आता है ? लाभके कारणसे आता है, सुखके कारणसे आता है। (परंतु) है दुःख। उन्हीं परिणामोंमें दुःख है, वर्तमानमें नुकसान है, भविष्यमें भी नुकसानका ही कारण है।

मुमुक्षु :- विचारणामें तो ऐसा ही है कि, दुःख है फिर भी भूल क्या होती है ?

पूज्य भाईश्री :- विचारणामें उसवक्त (दुःख) नहीं

है। उसवक्त हो तो रस निश्चितरूपसे टूटे ही ! उसवक्त हो तो अवलोकन होता है (जिससे) रस टूट जाता है। (मुमुक्षु) आगे-पीछे विचार करता है (परंतु) उस (उदयके) वक्त नहीं देखता। उस वक्त देखे तो (रस) अवश्य टूटे ही टूटे। एकदम तत्काल फल मिलता है। (रस) टूटे बिना रहे ही नहीं ! रस टूट ही जाये। उसी वक्त जागृत हो कि, मैं (ये) नुकसानमें खड़ा हूँ, मुझे मेरे आत्माको नुकसान नहीं करना है, (ऐसे देखेगा) तो फिर उसमें आगे नहीं बढ़ सकेगा।

मुमुक्षु :- उसवक्त वेदनको पकड़ना चाहिए। वेदन पकड़में आये तो जागृत हो जाये।

पूज्य भाईश्री :- तब तो काफी जागृति है, वेदन तक पहुँचे तब तो (काफी जागृति है)। परंतु अभी तो रस आता हो उसमें वेदनको कहाँसे पकड़ेगा ? क्योंकि अभी तो विचारमें (नहीं आता), अवलोकनमें नहीं आता, तो वेदनको तो कहाँसे पकड़ेगा ?

मुमुक्षु :- जीवको भूतकाल और भविष्यको देखनेकी आदत हो चुकी है, वह वर्तमानको नहीं देखता।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, सँभलनेका कार्य तो वर्तमानमें ही करना है और वर्तमानमें ही कार्य होगा। भविष्यका कार्य कहाँसे हो ? जो पर्याय आयी न हो उसमें काम नहीं होगा और जो पर्याय व्यतीत हो गई उसमें भी काम नहीं होगा, जो (पर्याय) चलती हो उसमें काम होगा। काम तो वहीं करना है। भूत-भविष्यका कार्य (वर्तमानमें) थोड़े ही हो सकता है या किया जा सकता है ?

मुमुक्षु :- जो चीज अभी हाजिर ही नहीं फिर उसमें प्रयोग कहाँसे करेगा ?

पूज्य भाईश्री :- किसके साथ करेगा ? किसके साथ काम करेगा ? आप आये नहीं हो फिर आपसे बात कैसे की जाये ? आप मिलेंगे जब तो आपसे बात करूँगा, मिलेंगे नहीं और बात करूँगा आपसे ? यह तो वैसी बात है।

(यहाँ कहते हैं), 'अखण्डकी अखण्डताका प्रयास भी शिथिल-सा ही रहता है।' (अर्थात्) पुरुषार्थ चलता है, लेकिन इन सारी उपाधियोंमें पुरुषार्थ भी थोड़ा शिथिल है। देखो ! कैसा स्वीकार करते हैं !! पुरुषार्थ चलता

है लेकिन पुरुषार्थ अभी थोड़ा मंद है। 'हे गुरुदेव ! आपमें तीव्र भक्तिका उदय होनेसे ही इधरके दुःखका इलाज होगा,...' देखो ! कैसा लिखा है गुरुदेवके लिए !! (गुरुदेवने) यह नहीं पढ़ा होगा ? हे गुरुदेव आपके प्रति अभी मेरी भक्ति कम है, यह ऐसा सूचित करता है। इतनी भक्ति करनेके बावजूद भी ऐसा कहते हैं कि, आपके प्रति मेरी भक्ति कम है। आपके प्रति तीव्र भक्तिका उदय होगा तब इस दुःखका इलाज हो पाएगा, वरना मेरे ये दुःख नहीं मिटेंगे। अतः मेरे दुःख तो आप ही मिटायेंगे। 'दूसरा कोई इलाज नहीं, यह भलीभाँति जानता हूँ।' देखो ! गुरुदेवश्रीका कितना विनय व भक्ति की है !!

मुमुक्षु :- चाहे कोई भी आये उसे भगवान ही कहते थे।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, विरोधकी पत्रिकाएँ - जैनके अखबार आते ही हैं। (फिर भी) अरे...! भगवान ! अरे...! भगवान ! ऐसा कहते थे। करुणा करके कहते थे। महापुरुषकी बात ही अलग होती है।

ऐसी बात बहिनश्रीके लिए सुनी थी कि, (उनको) पता हो कि ये विरोधी हैं, परंतु यदि वे दर्शनके लिए आनेकी बात करें तो कहते थे कि, उन्हें पहले आने दो ! ऐसा कहेंगे। क्या कहेंगे ? (उन्हें पहले आने दो)। और आने पर उनके हाल-चाल पूछते थे ! दूसरेसे बात नहीं करेंगे, (वे लोग) दर्शन करके चले जाते, जब कि इनके साथ दो शब्द सामनेसे चलाकरके बोलेंगे। उनके हाल-चाल पूछते, कैसे हो ? ऐसा है, वैसा है, कोई भी दो बातें सामनेसे छेड़ते थे। (उनके भावमें ऐसा रहता है कि) उनको अभाव हो तो भले ही हो, परंतु उनको अभाव हो तो मुझे भी अभाव हो जाये, फिर तो उनमें और अपनेमें क्या फर्क रहा ? यह उनकी महानता है ! यह महान आत्माओंकी महानता है।

मुमुक्षु :- धर्मात्माओंकी महानता भी कोई अलौकिक प्रकारकी होती है !

पूज्य भाईश्री :- ऐसा ही होता है ! संसारीप्राणी जैसे हो, उनके जैसा प्रकार तो कहाँसे होगा !

'हे गुरुदेव ! आपमें तीव्र भक्तिका उदय होनेसे

ही इधरके दुःखका इलाज होगा,...' आपकी भक्तिसे मेरा ये दुःख मिटेगा, और तो कोई इलाज मुझे नहीं लगता - ऐसा मैं बराबर अच्छी तरह समझता हूँ। अतः मेरी आपके प्रति भक्ति कम है, जिसे अभी मुझे बढ़ानी है, ऐसा अभिप्राय दिया। 'अधिक क्या लिखूँ ? सोनगढ़की दयाका पात्र हूँ।' मैं तो गुरुदेवकी करुणाका पात्र हूँ। मेरे लिए मैं क्या लिखूँ ? मैं तो कुछ नहीं। 'आपके उलाहने सुनने योग्य हूँ।' और आप जो उलाहने देते हो, वह सुननेका मैं पात्र हूँ। लिखीये, आप बिना संकोच दो शब्द कटु लिखें, कोई बात नहीं (ऐसा कहते हैं)।

'करीब एक माहसे कुछ शारीरिक अस्वस्थता भी चल रही है। हे प्रभु ! शीघ्र इधरसे निवृत्ति होकर

गुरुचरणोंमें रहना होवे,...' देखो ! कैसी भक्ति की है !! 'हे प्रभु ! शीघ्र इधरसे निवृत्ति होकर गुरुचरणोंमें रहना होवे, जिन्होंने अखण्ड गुरुवासमें चरना सिखाया है,...' यह निजगुरु ! अखण्ड गुरु अर्थात् अपना निजगुरु, उसके वासमें चरना सिखाया है, उनके चरणोंमें रहना मिले, 'यह ही विनती।'

'आप सबसे क्षमाका इच्छुक व आपकी वात्सल्यताका आभारी। आप तो उलाहने लिखते हो - उलाहने देते हो परंतु वह तो वात्सल्यके कारण लिखते हो न ! (अतः) मैं तो आपका आभार मानता हूँ। बुरा नहीं मानते कि, क्यों आप ऐसे लिखते हो ? क्यों ऐसा सुनाते हो ? सरलतासे बातको सुलटी लेते हैं।

पूज्य भाईश्री शशीभाई के पूज्य सोगानीजी सम्बन्धित हृदयोद्गार

हैं अथवा यह बात गुरुदेव से इसप्रकार प्राप्त हुई है। गुरुदेव ने जो कहा उसका सार मैंने इसप्रकार ग्रहण किया है। ऐसा कहकर बात को वहाँ (श्रीगुरु के नाम पर) चढ़ा दी है।

इस तरह कुदरती सभी पत्रों में भक्तिपूर्वक ही सभी बातें चली हैं। आयी है, परम शुद्ध निश्चय की बातें आयी हैं। भक्ति और विनय असाधारण ! परम विनय एवं परम भक्ति सहित यह सब प्रतिपादन हुआ है। उनको तो उस दिन पता भी नहीं था कि यह पत्र ग्रन्थारूढ़ होंगे। कुछ-एक तो उन्होंने फाड़ दिये। पता चला कि यह पत्र रखें हैं, सुरक्षित रखे हैं तो फाड़ दिये। यह क्या ? पत्र रखकर यह सब चर्चा इत्यादि क्या लगा रखा है ? पता चला कि इन पत्रों पर चर्चा चल रही है तो थोड़े-बहुत जो हाथ लगे उसे फाड़ दिये। यह सब चर्चा करके क्या प्रकाशित करना है ? प्रसिद्धि में आने-से वे पहले से ही इतने दूर रहते थे। लिखते समय तो ये तो पता नहीं था कि ये पुस्तकारूढ़ होंगे। लेकिन उनकी वाणी में कुदरती जितना जोर से निश्चय का विषय बाहर आया है, उतनी ही भक्ति साथ-साथ बाहर आ गई है। इससे एक संकेत मिलता है कि (अंतरंग अध्यात्म) दशा और भक्ति को साथ रहने की कैसी कुदरती परिस्थिति होती है ! निश्चय के साथ इतना सुमेल है। (अध्यात्म सुधा-भाग-१, पन्ना-३७९)



सोगानीजी के जीवन परिचय में यह बात ली है। जीवन परिचय दिया है। उनको जीवित रहना मुश्किल हो गया था। ऐसा शब्दप्रयोग किया है। वहाँ देखा था न ? एक-दो जगह यह बात लिखी है। शान्ति के लिए, इधर धून थी शान्ति की और उधर गृहस्थ होने के कारण संसार में भी योग देना पड़ता था। योग देना नहीं था, देना पड़ता था। पर मन उसमें रमता नहीं था। क्योंकि वह कार्य जबरन होता है। प्रत्येक सांसारिक कार्य विष-तुल्य लगता था। कैसा ? प्रत्येक सांसारिक कार्य विष-तुल्य लगता था। यहाँ तक कि भोजन भी इस अरुची से खाया जाता... सांसारिक कार्य में खाने का भी एक दैनिक प्रसंग होता है तो भोजन लेने बैठे तो भी अरुचिकर परिणाम से, रस ले ऐसा नहीं।

(अध्यात्म सुधा-भाग-२, पन्ना-४६)

पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न :- ज्ञानी को शुभराग काले नाग जैसा दिखाई देता है, - ऐसा कहनेका तात्पर्य तो यही है न, कि ज्ञानीको सविकल्पदशा में निरन्तर पूर्णता की भावना बनी रहती है ?

समाधान :- हाँ, स्वानुभूति-निर्विकल्पदशा हो तब तो विकल्पोंकी ओर उसका उपयोग भी नहीं है; स्वयं तो आनन्द में-निर्विकल्पदशा में है; परन्तु जब उसका उपयोग बाहर आता है तब जानता है कि इतनी अपूर्णता है; और मुझे पूर्णता कब प्राप्त हो ? यह विभावभाव मुझे नहीं चाहिए। इतना विभाव भी मुझे नहीं पोसाता।

जैसे आँखमें एक रजकण भी नहीं समाता, वैसे ही द्रव्यदृष्टि से मैं पूर्ण होनेपर भी पर्याय में इतनी भी कचास मुझे नहीं चाहिये; इसलिये राग उसे काला नाग लगता है। वह मुझे आदरणीय नहीं है, मैं पूर्ण हो जाऊँ ऐसी उग्र भावना वर्तती है। निर्विकल्पदशा के समय विकल्पकी ओर उसका उपयोग नहीं है और जब बाहर आता है तब भेदज्ञानकी धारा वर्तता है। उसे विभाव के साथ एकत्वबुद्धि नहीं है। (स्वानुभूतिदर्शन-२१२)



प्रश्न :- क्षायिक सम्यग्दृष्टि तलवार लेकर युद्ध के मैदान में जाये, इसमें क्या आश्चर्य नहीं लगता ?

समाधान :- इतनी उसकी अपूर्णता है, भावना तो उग्र है। अंतर में भेदज्ञानकी धारा वर्तती है, एकत्वबुद्धि नहीं है। राज्य का अल्प राग है इसलिये युद्ध के मैदानमें खड़ा रहता है; तथापि उसका वर्तन न्यायोचित होता है। उसकी अंतरपरिणति जुदी है; (हमें) उसके अंतर को देखना है।

जिसप्रकार हाथी के दाँत खाने के अलग और दिखाने के अलग होते हैं, उसीप्रकार ज्ञानी युद्ध क्यों करते होंगे ? - ऐसा लगता है, परन्तु उस समय भी वे स्वयं तो स्वभावकी परिणतिमें

ही स्थित हैं। अल्प राग है जिससे बाहर खड़े दिखाई देते हैं, परन्तु यदि उस समय भी वैराग्य-भावना तीव्र हो जाय तो मुनि होकर चल देते हैं। (स्वानुभूतिदर्शन-२१३)



प्रश्न :- क्या भेदज्ञान ही स्वानुभूति प्रगट करने का उपाय है ?

समाधान :- भेदज्ञानकी धारा द्वारा, स्वानुभूति होती है; बारम्बार भेदज्ञानकी तीक्ष्णता करने से स्वानुभूति होती है। किसीको उग्रता त्वरासे हो तो तत्काल-उसी क्षण-हो जाती है और अधिकांश जीवोंको अभ्यासकी उग्रता करनेपर स्वानुभूति होती है। 'समयसार' मोक्ष अधिकार के १८० वें कलश में तो भेदज्ञान अर्थात् स्वानुभूति की बात ली है। भेदज्ञान द्वारा तत्काल भेद हो जायगा उसमें तुझे स्वानुभूति होगी। विकल्पवाली भूमिकामें लेना हो तो बारम्बार अभ्यास अर्थात् बारम्बार भेदज्ञानकी उग्रता करने से तुझे स्वानुभूति होगी। उस समय विकल्प है परन्तु विकल्प में नहीं हूँ, मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ - ऐसी ज्ञाताधाराकी उग्रता द्वारा तुझे स्वानुभूति होगी। (स्वानुभूतिदर्शन-२१४)



प्रश्न :- परिणति और उपयोग-दोनोंमें क्या अन्तर है ?

समाधान :- परिणति और उपयोग में फेर है। भेदज्ञानकी धारारूप उसकी परिणति तो निरन्तर वर्तती ही है, जबकि उपयोग बाहर आता है और अंतरमें जाता है। उपयोग अंतरमें जाये तब स्वानुभूति होती है। फिर बाहर आता है। उपयोग बाहर आने पर भी परिणति तो बनी ही रहती है। इसप्रकार परिणति और उपयोगमें फेर है। भेदज्ञानकी धारा तो चल ही रही है, अमुक अंशमें-जितनी दशा प्रगट हुई है उतनी चलती है।

(स्वानुभूतिदर्शन-२१५)



पूज्य श्री सोगानीजी की १०० वीं जन्मजयंती पर कोटीकोटी वंदन

धन्य गुरु ! धन्य शिष्य !

पुरुषार्थमूर्ति पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी के विषय में
अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री के प्रमोदपूर्ण हृदयोद्गार !

'सोगानी' का पुस्तक है... 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' ! (उनमें) बहुत शक्ति थी। आत्मज्ञान हुआ था। यहीं... इसी गाँव में...! पहले साधु-बावा का बहुत परिचय किया था। यम, नियम, ध्यान... (सब किया था)। फिर यहाँ आये (तो हमने) इतना कहा - 'भैया ! ये विकल्प ऊठता है न ! राग ! चाहे तो दया, दान का हो ! ये सब राग से अंदर प्रभु भिन्न है !' ऐसा कहा और ध्यान में बैठे ! अंदर में घोलन करते.. करते... करते... राग से भिन्न चैतन्य का अनुभव यहाँ समिति में हुआ था। बाद में सारी जिंदगी बहुत अच्छे संस्कार लेकर स्वर्ग में चले गये ! आहा..हा...! बहुत शक्ति थी ! 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' है न ! उसमें बहुत है ! ...वहाँ से (स्वर्ग से) निकलकर बाद में दूसरे भव में केवलज्ञान पाकर मोक्ष हो जायेगा ! ...वहाँ स्वर्ग में भी आत्मा में ठरते हैं। परंतु थोड़ा राग है तो मनुष्यभव पाकर, केवलज्ञान पाकर, राग का नाश होकर मुक्ति होगी !!

(श्री 'समयसार कलश टीका' कलश-२१६ के प्रवचनमें से, प्रवचन नं. २४१)



पूज्य गुरुदेवश्रीके महापुराणका यह एक पात्र है। सोनगढ़की तीर्थभूमि-इस तीर्थभूमिमें सम्यक्दर्शनरूपी सपूत कोई पैदा नहीं हुआ था, तब तक जो-जो धर्मात्मा हुए वे सोनगढ़ भूमिमें नहीं हुए, अलग-अलग भूमि पर हुए हैं। जबकि गुरुदेवकी यह जो साधनाभूमि है, इस साधनाभूमिको साधनाकी एक नयी यशकलगी लगी और यह भूमि भी फलवंती हुई और एक फल पका-वे सोगानीजी हैं। पूज्य सोगानीजीका बहुमान, यह सिर्फ एक व्यक्तिका बहुमान नहीं है, यह सम्यक्दर्शनका बहुमान है और जो-जो सभी सम्यक्दर्शन धारक महात्माएँ हैं, धर्मात्माएँ हैं, उन अनंत-तीनों कालके धर्मात्माओंका बहुमान है, सन्मान है।

(-पूज्य भाईश्री शशीभाई)

शासन शिरोमणि, निश्चयरत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग प्रकाशक, भावि के भगवान, जिनेन्द्र लघुनंदन पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की १२२वीं जन्मजयंती के मंगलकारी प्रसंग पर उनके पावन पादपंकज में शत शत वंदन हो !



गुरुदेव तो स्वयं एक अलौकिक द्रव्य थे, अलौकिक उनका परिणामन था और पुण्यका वाणीका योग भी कोई अलौकिक सातिशय योग था। गुरुदेवश्री को श्रुतकी लब्धि थी। श्रोताओंको तो कानमें जैसे कोई अमृतकी धार करता हो ऐसा मीठा लगे ! कुछ एक जीवोंको तो ऐसा लगा है कि जैसे कोई दैवी वाणी निकल रही है !! एक असाधारण युगपुरुष जैसा गुरुदेवका व्यक्तित्व था और कर्तृत्व भी ऐसा ही था।

-पूज्य भाईश्री शशीभाई